इकाई–23 : रूपांतरण का भाषाई स्वरूप

इकाई की रूपरेखा

23.0 उद्देश्य
23.1 प्रस्तावना
23.2 सिनेमाई रूपांतरण में भाषा की भूमिका
23.3 साहित्यिक भाषा और सिनेमाई भाषा
23.4 सिनेमा की भाषा और सिनेमा में भाषा
22.5 चरित्र–चित्रण में संवाद की भूमिका
23.6 सिनेमाई भाषा और संगीत
23.7 सिनेमा में गीत
23.8 सारांश
23.9 उपयोगी पुस्तकें
23.10 अभ्यास के लिए प्रश्न

23.0 उद्देश्य

एम. ए. हिंदी के इस आठ क्रेडिट के पाठ्यक्रम 'सिनेमा लेखन' के खंड–6 'साहित्य और सिनेमा' की यह दूसरी इकाई है और पाठ्यक्रम की 23वीं इकाई है। इस इकाई का शीर्षक है, 'रूपांतरण का भाषायी स्वरूप'। इस इकाई में साहित्य से सिनेमा में रूपांतरण की प्रक्रिया में भाषा के प्रयोग के विविध रूपों पर विचार किया गया है।

सिनेमाई रूपांतरण में भाषा की अहम भूमिका होती है। जब किसी साहित्यिक कृति को फ़िल्मांतरण के लिए चुना जाता है तब उस कृति को पटकथा में बदलना होता है। पटकथा मूल रचना का वह रूपांतरण है जिसे आधार बनाकर फिर फ़िल्म का निर्माण होता है। मूल रचना की तरह पटकथा भी उसी भाषा में लिखी जाती है जिसमें साहित्यिक रचना लिखी जाती है। लेकिन सिनेमा की भाषा दृश्य की भाषा है। पटकथा में पटकथाकार कथा के आधार पर दृश्यों की कल्पना करता है जिसे फ़िल्मकार कैमरे की मदद से रूपायित करता है। साहित्य की भाषा और सिनेमा की भाषा में यही बुनियादी अंतर है कि एक शब्दों के माध्यम से व्यक्त होती है और दूसरी दृश्यों के माध्यम से।

साहित्यिक भाषा और सिनेमा की भाषा का अंतर वही होता है जो शब्द और दृश्य का अंतर होता है। शब्द से हम मनुष्य द्वारा की जाने वाली क्रियाओं का चित्रांकन या वर्णन कर सकते हैं। लेकिन दृश्य माध्यम में शब्दों को दृश्यों में रूपांतरण करना होता है जो मूल रूप में दृश्य ही होते हैं। लेकिन साहित्यिक रचना में जो कुछ लिखा गया है उन सबको दृश्य में रूपांतरित नहीं किया जा सकता। उसके लिए कुछ ऐसी प्रविधियों का प्रयोग किया जाता है जिससे साहित्यिक भाषा और सिनेमा की भाषा की दूरी को कम किया जा सके।

सिनेमा की भाषा और सिनेमा में भाषा दो अलग बाते हैं। सिनेमा की भाषा का अर्थ है कैमरे से जो दृश्य फ़िल्माये जाते हैं, उससे सिनेमा की भाषा का निर्माण होता है। लेकिन केवल कैमरे से नहीं बल्कि उनके साथ ध्वनि, संगीत और शब्द का भी प्रयोग होता है और इन सबके संयोग से सिनेमा की भाषा निर्मित होती है। लेकिन कैमरे के अलावा शब्दों, ध्वनियों और संगीत का उपयोग दरअसल सिनेमा में भाषा का इस्तेमाल है और इन दोनों भाषाओं के अंतर को और इनके बीच संबंध को समझना जरूरी है।

साहित्य की तरह सिनेमा में पात्रों के चरित्र–चित्रण के लिए उन प्रविधियों का इस्तेमाल किया जाता है जो साहित्य में भी किये जाते हैं। लेकिन कैमरे से जो दृश्य निर्मित करते हैं और उनके माध्यम से जो क्रियाकलाप हमारे सामने आते हैं या पात्रों के अभिनय द्वारा जो भावाभिव्यक्ति होती है, उनसे भी चरित्र–चित्रण में मदद मिलती है।

संगीत सिनेमाई भाषा का एक अपरिहार्य अंग है। संगीत का इस्तेमाल दो रूपों में होता है, पार्श्व संगीत के रूप में और स्वतंत्र संगीत के रूप में। पार्श्व संगीत का मकसद फ़िल्म में व्यक्त स्थितियों, संघर्षों, तनावों, भावनाओं की अभिव्यक्ति में सहायक के रूप में होती है। उनकी तीव्रता और गहनता पार्श्व संगीत द्वारा व्यक्त की जाती है।

भारतीय सिनेमा में गीतों का प्रयोग फ़िल्म की कहानी के उन सिचुएशन को ध्यान में रखकर किया जाता है जहां भावनाओं की अभिव्यक्ति रागात्मक रूप में किया जाना कहानी के प्रभाव को बढ़ाने वाला होता है। गीत के द्वारा भावनाओं, स्थितियों, संघर्षों, तनावों को व्यक्त किया जाता है। प्रेम, अकेलापन, वेदना, आशा–निराशा आदि कई तरह की भावनाओं को गीतों के माध्यम से व्यक्त किया जाता है।

साहित्य और सिनेमा के अंतःसंबंधों को और उनकी भाषाओं के अंतर को सही परिप्रेक्ष्य में समझने के लिए इस इकाई में 'देवदास' और 'सारा आकाश' कृतियों का उदाहरण दिया गया है और साथ ही उन पर बनी फ़िल्मों का भी उल्लेख किया गया है ताकि आपको इनके संबंधों को व्यवहारिक रूप में समझने में मदद मिले। इकाई में कुछ अन्य फ़िल्मों का उल्लेख भी आया है।

23.1 प्रस्तावना

सिनेमा लेखन से संबंधित इस पाठ्यक्रम के पांच खंड आपने पढ़ लिए होंगे और इस छठे खंड जिसमें साहित्य और सिनेमा के अंतःसंबंधों पर विचार किया जाना है, उसकी पहली इकाई भी आपने पढ ली होगी। यह पाठ्यक्रम की 23वीं इकाई और इस खंड की दूसरी इकाई है। इस इकाई का शीर्षक है, 'रूपांतरण का भाषायी स्वरूप'। इससे पहले की इकाई में आपने 'साहित्य से सिनेमा में रूपांतरण की प्रक्रिया' का अध्ययन किया था। उस इकाई के क्रम में इस इकाई में साहित्य रचना के सिनेमाई रूपांतरण में भाषा के स्वरूप पर विचार किया गया है। सिनेमा में भाषा का प्रयोग दो रूपों में होता है। सिनेमा एक दृश्य माध्यम है और कैमरे के द्वारा जो दृश्य फ़िल्माये जाते हैं वह भी एक भिन्न तरह की भाषा का निर्माण करते हैं। फ़िल्म विभिन्न दृश्यों के अर्थपूर्ण संयोजन से निर्मित होती है। दृश्य (सीन) विभिन्न शॉटों के संयोजन से निर्मित होता है और शॉट विभिन्न फ्रेमों से निर्मित होता है। फ़िल्म केवल दृश्यों का संयोजन नहीं है। दृश्यों को परिपूर्णता संवादों से, संगीत से, परिवेश में व्याप्त ध्वनियों से मिलती है। इस तरह दृश्यों से निर्मित सिनेमा की भाषा और संवाद, संगीत और विभिन्न ध्वनियां मिलकर जो दृश्य से भिन्न भाषा निर्मित होती है, इन दोनों के संयोजन के बिना सिनेमा का निर्माण नहीं हो सकता। सिनेमा की भाषा में कैमरे के संचालन के जो तरीके अपनाये जाते हैं, वे दृश्यों को विशिष्ट स्वरूप प्रदान करते हैं। क्लोजअप, मिडशॉट, लांग शॉट आदि के द्वारा खास तरह का प्रभाव पैदा किया जाता है। इन दृश्यों के विभिन्न शॉटों को संपादन के द्वारा भी विशिष्ट स्वरूप दिया जाता है। एक शॉट और दूसरे शॉट के बीच कट का इस्तेमाल करना, दो शॉट को जोड़ने के लिए डिजॉल्व का इस्तेमाल करना, जूम इन और जूम आउट का इस्तेमाल करना इसलिए ज़रूरी हो जाता है कि इससे दृश्य के उस अर्थ को पैदा किया जा सके जिसे पैदा करना फ़िल्मकार का मकसद होता है। यह बिल्कुल वैसा ही है जैसे किसी कहानी या उपन्यास में लेखक अपनी बात को प्रभावशाली बनाने के लिए वाक्य रचनाओं को विशिष्ट स्वरूप प्रदान करता है। उन्हें छोटा–बड़ा बनाता है। खास अर्थ व्यक्त करने वाले शब्दों का प्रयोग करता है। दृश्य में भी ऐसा ही किया जाता है।

सिनेमा की भाषा में अभिनय के साथ–साथ माहौल का निर्माण भी बहुत ज़रूरी हो जाता है। माहौल के निर्माण में प्रकाश और अंधकार, माहौल में मौजूद ध्वनियों का प्रयोग, सन्नाटे का प्रयोग और शोरगुल का प्रयोग किया जाता है। माहौल के निर्माण कहानी की ज़रूरत के अनुरूप किया जाता है। कहानी में दृश्य रूमानी किस्म का है तो माहौल भी उसी तरह का होना चाहिए और अगर कहानी से रहस्य और रोमांच पैदा किया जाना है तो उसी तरह की प्रकाश व्यवस्था, ध्वनियों और पार्श्व संगीत का उपयोग किया जाता है। कहानी की ज़रूरत के अनुसार गीतों का उपयोग भी माहौल निर्मित करने के लिए किया जाता है। उदाहरण के लिए 'बीस साल बाद' में 'कहीं दीप जले कहीं दिल' गीत फ़िल्म की रहस्यात्मकता को बढ़ाता है।

इस तरह सिनेमाई रूपांतरण में भाषा की भूमिका, साहित्यिक भाषा और सिनेमा की भाषा का अंतर और सिनेमा की भाषा और सिनेमा में भाषा, सिनेमा की भाषा के निर्माण में संगीत, पार्श्व संगीत, ध्वनियों और गीतों की भूमिका पर भी विचार किया गया है। इन सब पक्षों के बारे में आप इकाई में आगे पढेंगे।

23.2 सिनेमाई रूपांतरण में भाषा की भूमिका

भाषा का संबंध मनुष्य के भावों, विचारों और क्रियाकलापों से होता है। किसी भी भाषा को किसी भी स्थिति में मनुष्य के सोच और कार्यों से अलग करके नहीं देखा जा सकता। सिनेमा एक दृश्य माध्यम है और उसमें हम उन क्रियाकलापों को देखते हैं जो हमारे जीवन में घटित होते हैं, ठीक उसी रूप में या उसके अतिरंजित रूप में लेकिन फ़िल्म के पर्दे पर जो भी हम देखते हैं उसकी वास्तविकता या अवास्तविकता का निर्णय हम अपने और अपने आसपास के जीवन से तुलना करके करते हैं। सिनेमा की शुरुआत जब हुई थी तब वह केवल दृश्य माध्यम था और उसमें आवाज़ और ध्वनियों का इस्तेमाल नहीं होता था। लेकिन दो–तीन दशक में ही सिनेमा मूक से सवाक हो गया। और ऐसा होते ही सिनेमा जीवन के और अधिक नज़दीक आ गया। अब सिनेमा ऐसा दृश्य माध्यम हो गया जिसमें आवाज़ का भी इस्तेमाल होने लगा। यानी अब फ़िल्म के पात्रों की आपसी बातचीत न केवल हम देख सकते थे बल्कि सुन सकते थे। आवाज़ के इस्तेमाल ने फ़िल्म को गुणात्मक रूप से बदल डाला। लेकिन सिनेमा में केवल पात्रों की बातचीत में ही भाषा का इस्तेमाल नहीं होता वरन वहां भी होता है जहां कोई एक अकेला पात्र कुछ सोच रहा होता है, उसके मन में कोई उमड़न–घुमड़न चल रही होती है। यहां तक कि जब दो पात्र या दो से अधिक पात्र परस्पर बातचीत कर रहे होते हैं तब भी यह मुमकिन है कि वह जिस व्यक्ति से बातचीत कर रहा है और उसकी बात का वह जो जवाब देता है, ठीक उन्हीं क्षणों में उसके मन में कोई और विचार आ रहा होता है। ऐसे में संवाद के रूप में ही भाषा सामने नहीं आती बल्कि आत्मालाप के रूप में भी भाषा व्यक्त होती है। राजेंद्र यादव के उपन्यास 'सारा आकाश' पर बासु चटर्जी के निर्देशन में बनी फ़िल्म का निम्नलिखित अंश देख सकते हैं जहां फ़िल्म के नायक समर (राकेश पांडे) के मन में जो उमड़न–घुमड़न चल रही है, उसे निम्नलिखित ढंग से पेश किया गया है। यह प्रभा (मधु) और समर की शादी के बाद की पहली रात है और दोनों एक ही कमरे में हैं। प्रभा खिड़की के पास खड़ी है और समर पलंग पर लेटा है। प्रभा को खिड़की के पास देखकर उसके मन में क्या ख्याल आ रहे हैं और किस तरह की प्रतिक्रिया वह कर रहा है। कमरे के वातावरण को वह किस तरह महसूस करता है उसे पटकथा के इस अंश द्वारा समझा जा सकता है।

> *प्रभा की पीठ– वह अभी भी खिड़की के पास खड़ी है– कैमरा पीछे हटता है– समर अधलेटा दिखाई देता है– उसका चेहरा तना है– वह सीधा होकर दीवार के सहारे बैठ जाता है– अपनी पीठ के पीछे लगे तकिए को झटके से किनारे करता है– वह लगभग हांफ रहा है– पंखे के खड़खड़ाने की आवाज़ बुलंदी पर पहुंच जाती है। कैमरा कमरे के सभी कोणों को विकृत कर देता है– समर के तमतमाए चेहरे पर केंद्रित होता है–प्रभा को छूता हुआ निकल जाता है– बिजली के पंखे का घूमना–हिलता हुआ बल्ब– निम्नलिखित शब्द समर के कानों से टकरा रहे हैं– मैं यहां क्यो आया! न बोला न*

स्वागत! क्या यह मेरा अपमान नहीं है? खड़ी है ढीठ की तरह खिड़की पर। यही शिक्षा है इनकी !मैट्रिक पास। समझती हैं, दूसरे लड़कों की तरह मैं इन्हें मनाऊंगा, खुशामद करूंगा? हुँह...बदतमीज़!!

यहां फ़िल्मकार ने समर के मन में चलने वाली उमड़न–घुमड़न को ही नहीं उस पूरे माहौल को मानसिक रूप से वह किस तरह ग्रहण कर रहा है, इसे भी दर्शाया है। पंखे के खड़खड़ाने की आवाज़ का बुलंद होना और कैमरे में कमरे के सभी कोणों का विकृत होना भी समर की मनः–स्थिति को दर्शाता है। बिजली के पंखे का घूमना और बल्ब का हिलना पूरे माहौल के तनाव को व्यक्त करता है। उसके बाद समर जो सोचता है या उसके मन में जो विचार उमड़ रहे हैं, उसे भी बताया गया है। जाहिर है कि इसे वॉयस ओवर के द्वारा पेश किया गया है। समर बोलता हुआ नहीं बल्कि सोचता हुआ नज़र आ रहा है। दर्शक इस दृश्य को देखते हुए समझ जाता है कि समर के मन में क्या विचार उठ रहे हैं और उसकी मनःस्थिति कैसी है। इस दृश्य के बाद जब वह कमरे से चला जाता है तो उसका जाना हमें तार्किक लगता है।

यहां भाषा के दो रूप हमें दिखायी देते हैं। एक, जब पात्र अपने मन में सोचता है और दो, जब दृश्य और ध्वनि से पात्रों की मनःस्थिति को दर्शाया जाता है। यह सिनेमाई भाषा है जिस पर हम आगे विस्तार से विचार करेंगे। साहित्यिक रचना का जब सिनेमाई रूपांतरण करना होता है तब उसमें घटनाओं, प्रसंगों, स्थितियों, पात्रों की पारस्परिक वार्तालाप, उनकी शारीरिक चेष्टाओं, उनके मन में उठने वाले विचारों और भावनाओं को रूपांतरित करना होता है। साहित्य में इन सबको भाषा के द्वारा वर्णित किया जाता है। वर्णन करते हुए लेखक कई तरह की प्रविधियों का इस्तेमाल करता है ताकि जो कुछ भी लिखे वह रचनात्मक भी हो और प्रभावशाली भी। लेकिन किसी कहानी और उपन्यास में जो कुछ भी होता है उसे ठीक उसी रूप में रूपांतरित नहीं किया जा सकता जिस रूप में लेखक ने मूल रचना में वर्णित किया है। उदाहरण के लिए 'सारा आकाश' के निम्नलिखित अंश को देख सकते हैं जिसमें समर की बहन मुन्नी के विवाहित जीवन का समर के माध्यम से वर्णन किया गया है। यहां समर अपनी बहन के बारे में सोच रहा है लेकिन सोचते हुए वह अतीत में घटी घटनाओं को एक–एक कर याद करता है :

हमारे घर में मुन्नी ही सबसे अभागिन है। मुझसे दो साल छोटी है, दो–तीन साल पहले, सोलह–सत्रह की उम्र में उसकी पढ़ाई छुड़ाकर शादी कर दी गई। 'इतनी बड़ी कर ली है' के लगातार प्रहारों से मजबूर होकर घर की कुछ चीज़ें बेच–बाचकर, कुछ भाई साहब की शादी में मिली चीजें मिलाकर दहेज दिया। उफ, क्या तंग किया बारातियों ने भी– हमारी खातिर यों होनी चाहिए, हमें यह चाहिए। ससुराल से मुन्नी के बड़े ही करुणापूर्ण खत आते। यहां आती तो बुरी तरह बिलख–बिलखकर रोती। सास और पति मिलकर जो–जो अत्याचार करते उन्हें किसी से कह भी तो नहीं सकती थी। इसका पता तो बाद को चला कि पति का चाल–चलन कैसा है और वह रातों कहां–कहां घूमता है। एक डेढ़ साल तो गाड़ी रोते–झींकते खिंचती रही, लेकिन सास के मरते ही मुसीबतों का पहाड़ अर्राकर टूट पड़ा। अब पतिदेव का हाथ पकड़नेवाला कौन था। उसने जाने किसको लाकर घर में डाल लिया। सुनते हैं, कोई ब्राह्मण जाति की थी। नौकरानी की तरह अपनी और अपनी उस रखैल की मुन्नी से सेवा कराता, और दो–दो, तीन–तीन दिन खाना नहीं देता था। और भी न जाने कितने कहे–अनकहे अत्याचार किए। मुन्नी तो बताती ही नहीं थी। रात–रात भर इसकी दोनों हथेलियों पर खाट के पाए रखकर इसे कुढ़ाने और जलाने का अपनी आनंद–क्रीड़ा के प्रदर्शन किए जाते और एक दिन सारे शरीर पर बेंतों के फूले हुए नीले निशान लेकर मुन्नी सुबह–सुबह फिर हमारे यहां आ गई। बस तब से यहीं है।

मुन्नी के जीवन की विडंबना को 'सारा आकाश' में लगभग ढाई सौ शब्दों में वर्णित किया गया है। चूंकि ये सारी बातें समर के मन में उठ रही है इसलिए इसे भी कैमरा समर के चेहरे पर रखकर वायस ओवर के माध्यम से कहा जा सकता था। लेकिन यह कहा जाना बिल्कुल प्रभावित नहीं करता क्योंकि यह मन की उमड़न–घुमड़न नहीं है बल्कि अतीत में घटी कुछ घटनाओं का स्मरण है। इन घटनाओं को लेखक पूर्वदीप्ति

के माध्यम से घटित होता हुआ दिखा सकता था। दरअसल इस संक्षिप्त वर्णन में कई प्रसंगों का उल्लेख हैं जिन्हें फ़िल्म में यदि दिखाया जाता है तो एक विस्तृत कहानी प्रस्तुत करनी होगी। कह सकते हैं कि उपन्यास में समर और प्रभा की कहानी को जो विस्तार मिला है, ठीक वैसा ही विस्तार मुन्नी की कहानी को देना होगा। लेकिन न फ़िल्मकार और न उपन्यासकार ऐसा चाहता है। दोनों ही कथा के केंद्र में समर और प्रभा की कहानी को रखना चाहते हैं। तीसरा विकल्प यह होता कि मुन्नी की कहानी स्वयं मुन्नी द्वारा कहलायी जाती जो इन सबके माध्यम से अपने विवाहित जीवन की त्रासदी को व्यक्त करती। लेकिन फ़िल्म में कहानी का प्रवाह जिस तरह से गतिमान होता है उसके लिए फ़िल्मकार को उपयुक्त प्रसंग की कल्पना करनी पड़ती। मसलन, फ़िल्म के शुरुआत में ही मुन्नी को अपने ससुराल से लौटा हुआ दिखाया जाता। उसके माता–पिता आदि उसके अचानक इस तरह आने का कारण मुन्नी से जानना चाहते और तब मुन्नी रोते–बिलखते अपनी कहानी बयान करती। लेकिन तब उपन्यास के केंद्र में मुन्नी हो जाती।

मुन्नी उपन्यास में लगातार उपस्थित रहती है और घर में प्रभा के प्रति उसी के मन में सहानुभूति का भाव है। स्वयं उसकी कहानी क्या है, यह तभी फ़िल्म में सामने आती है जब उसका पति उसे लेने आता है और ले भी जाता है। यह प्रसंग अपेक्षाकृत लंबा है। फ़िल्म में इस प्रसंग को शामिल किया गया है। मुन्नी के विवाहित जीवन की विडंबना इसी प्रसंग में फ़िल्मकार उजागर करता है। जो बातें उपन्यास में समर के माध्यम से मुन्नी के विवाहित जीवन के बारे में आरंभ में कही गयी है उसे फ़िल्म में इसी प्रसंग में समेट लिया गया है। यहां पूरे प्रसंग को इस तरह प्रस्तुत किया गया है कि मुन्नी की कहानी सांकेतिक रूप में सामने आ जाती है और दर्शक को सारे प्रसंगों से गुजारे बिना मुन्नी का दुख भरा जीवन सामने आ जाता है। मुन्नी के माता–पिता और भाइयों की आपसी बातचीत में मुन्नी के विवाहित जीवन की कहानी सामने आ जाती है, बिल्कुल उस तरह नहीं जिस तरह समर द्वारा उपन्यास में बताया गया है, लेकिन फिर भी कहानी दर्शकों के सामने स्पष्ट हो जाती है। इसी प्रसंग में मुन्नी अपने पिता को रोते हुए जो कहती है, उससे उसकी पूरी व्यथा साकार हो जाती है :

> *मुन्नी : बाबूजी मुझे मार डालो, मेरा गला घोंट दो। मुझे वहां मत भेजो, मुझे वहां मत भेजो, बाबूजी। मैं वहां मर जाऊँगी। मैं तुम्हारे हाथ जोड़ती हूं...पांव पड़ती हूं...*
> *मुन्नी आगे आती है और पिता के पांवों पर पड़ जाती है और उन्हें पकड़ लेती है...सारा समय रोती रहती है...अमर रोना शुरू कर देता है...समर की आंखें भर आती हैं...पिता खींचकर उसे अपनी गोद के पास लाता है– वह खुलकर रो रही है।*

मुन्नी के इस पूरे प्रसंग से स्पष्ट है कि कहानी या उपन्यास में बहुत–कुछ जो वर्णन द्वारा कह दिया जाता है, जरूरी नहीं कि फ़िल्म में उसका यथावत रूपांतरण किया जाये। फ़िल्म में चूंकि कहानी को दृश्यों के द्वारा दिखाया जाना होता है इसलिए उसको यथावत विस्तार देने की बजाय संकेतात्मक रूप से कहना कई बार पर्याप्त होता है। अगर 'सारा आकाश' में मुन्नी की कहानी को उपन्यास में वर्णित प्रसंगों के अनुसार विस्तार दिया जाता तो समर और प्रभा की कहानी का तारत्मय टूट जाता।

'सारा आकाश' के इस विस्तृत उल्लेख से यह स्पष्ट हो गया होगा कि सिनेमाई रूपांतरण में कथा–रचना में भाषा का जिन–जिन रूपों में इस्तेमाल होता है उनका सिनेमाई रूपांतरण आसान नहीं है और न ही रूपांतरण का कोई एक विकल्प होता है। यह पटकथाकार और फ़िल्मकार पर निर्भर होता है कि एक ही प्रसंग के सिनेमाई रूपांतरण के लिए कौन–सा विकल्प सर्वाधिक उपयुक्त है। लेकिन कथा के रूपांतरण का फैसला फ़िल्मकार अलग–अलग प्रसंगों के संदर्भ में अलग–अलग ढंग से करता है तो बहुत मुमकिन है कि फ़िल्म पूरी तरह से बिखर जाये। इसलिए बहुत जरूरी है कि फ़िल्मकार पूरी कथा–रचना के केंद्रीय भावबोध को दृष्टिगत रखे और उस केंद्रीय विचार को भी, जो कथा में आरंभ से अंत तक अंतर्निहित होता है। इन दोनों को दृष्टिगत रखते हुए ही कथा के विभिन्न प्रसंगों के रूपांतरण पर अलग–अलग विचार करना समीचिन होता है और सिनेमा की भाषा की शक्ति और संभावना को उसे ध्यान में रखना होता है।

23.3 साहित्यिक भाषा और सिनेमाई भाषा

कथा की भाषा के रूपांतरण की प्रक्रिया में यह बुनियादी बात ध्यान में रखनी होती है कि सिनेमा की भाषा के केंद्र में दृश्य होते हैं जबकि कथा की भाषा के केंद्र में शब्द होते हैं। शब्दों का संयोजन जिन वाक्यों में होता है वह सदैव एक ही अर्थ व्यक्त नहीं करता। ठीक उसी तरह दृश्यों का संयोजन भी सदैव एक ही अर्थ व्यक्त करे यह आवश्यक नहीं है। अर्थ की विविध संभावनाओं को लेखक और फ़िल्मकार दोनों को ध्यान में रखना होता है। दोनों तरह की भाषाओं का सर्जनात्मक उपयोग तब ही मुमकिन है। इन दोनों तरह की भाषाओं की अपनी सीमाएं भी हैं। कथा में जो बातें वर्णन द्वारा कह दी जाती है उसे सिनेमा में उसी ढंग से नहीं कहा जा सकता। यहां फिर 'सारा आकाश' का उदाहरण लिया जा सकता है। विवाह के तत्काल बाद अपनी पत्नी प्रभा के बारे में सोचते हुए समर अपने–आप से कहता है, 'कोई कहता था, प्रभा दसवीं पास है'। इसी तरह अगले पैरा में वह कहता है, 'कोई कहता था, बहुत पढ़ी–लिखी है, बड़ी समझदार है'। प्रभा दसवीं पास है, बहुत पढ़ी–लिखी है और समझदार है। यह दरअसल प्रभा के व्यक्तित्व की विशेषताएं हैं जिसे लेखक ने समर के माध्यम से सीधे–सीधे कह दिया है। लेकिन दृश्य माध्यम में इस तरह सीधे ढंग से कहना उपयुक्त नहीं समझा जाता। उसके लिए फ़िल्मकार को कोई और प्रविधि अपनानी होती है। उसे कहना नहीं दिखाना होता है। लेकिन कैसे? इसी प्रश्न का उत्तर फ़िल्मकार को ढूंढना होता है। हम फ़िल्म में देखते हैं कि प्रभा के पढ़े–लिखे होने को व्यंग्य के रूप में उसकी सास, जेठानी और पति द्वारा तब कहा जाता है जब किसी बात पर उसकी निंदा की जानी होती है। इस तरह दर्शक को यह जानकारी भी मिल जाती है कि वह दसवीं पास है और उसके पढ़े–लिखे होने को गुण की बजाय अवगुण की तरह पेश किया जाता है।

'देवदास' उपन्यास के एक प्रसंग से इस बात को और अच्छी तरह से समझा जा सकता है। पार्वती उर्फ पारो के पिता नीलकंठ चक्रवर्ती के बारे में उपन्यासकार कुछ सूचनाएं देता है जिससे उनकी आर्थिक स्थिति का पता चलता है :'पार्वती के पिता का नाम था नीलकंठ चक्रवर्ती। ज़मींदार साहब के पड़ोसी थे, यानी मुखर्जी बाबू के महल के पास ही उनका पुराना और छोटा–सा मकान था, पक्का। दस–पांच बीघे ज़मीन, दो–चार घर यजमान थे। ज़मींदार के यहां से आस–उम्मीद रहती थी, खुशहाल परिवार, मजे से दिन गुजरते'। पार्वती के पिता की आर्थिक स्थिति का वर्णन उपन्यास में चार पंक्तियों में बता दिया गया है। लेकिन फ़िल्म में इस तरह के वर्णन की गुंजाइश नहीं होती। चूंकि देवदास और पार्वती दोनों मुख्य पात्र हैं और उपन्यास में उनके घरों का उल्लेख भी बार–बार आता है इसलिए फ़िल्म में उन घरों को दिखाना जरूरी हो जाता है। उपन्यास में जहां देवदास के पिता जो एक ज़मींदार हैं उनके घर को 'महल' कहा गया है और दूसरी ओर पार्वती के पिता के घर को 'पुराना और छोटा–सा मकान' बताया गया है जो पक्का बना हुआ है। चूंकि दोनों एक दूसरे के पड़ोसी हैं इसलिए 'देवदास' के ज़मींदार नारायण मुखर्जी के 'महल' (जो दरअसल बड़ी–सी हवेली है) के पास ही नीलकंठ चक्रवर्ती का पुराना, छोटा और पक्का घर दिखाया जा सकता है जो बिमल राय ने अपनी फ़िल्म में दिखाया भी है। दोनों घर देखकर देवदास और पार्वती के परिवार की आर्थिक स्थिति के अंतर को समझने में दर्शक को कोई कठिनाई नहीं होती। जहां तक दस–पांच बीघे ज़मीन और दो–चार घर यजमान के उल्लेख का सवाल है, उसको फ़िल्मकार बाद में किसी प्रसंग में चर्चा के दौरान बता सकता है और अगर नहीं भी बताया जाता है तो फ़िल्म में देवदास और पार्वती के परिवार की आर्थिक स्थिति के अंतर को समझना दर्शकों के लिए बहुत कठिन नहीं है। क्योंकि फ़िल्म जैसे–जैसे आगे बढ़ती है दोनों परिवारों की हैसियत का अंतर और स्पष्ट रूप में सामने आता जाता है। मसलन, देवदास के साथ निरंतर उसके नौकर धर्मदास का रहना, पढ़ने के लिए कलकत्ता भेजा जाना, देवदास के घर में बहुत से नौकरों का होना, नारायण मुखर्जी का हुक्का गुड़गुड़ाना, नौकर द्वारा पंखा झेलना ये सब बातें दोनों परिवारों के बीच के अंतर को आसानी से दर्शकों तक संप्रेषित कर देता है और फ़िल्मकार को अलग से कुछ बताने की ज़रूरत नहीं होती। यह अंतर महत्त्वपूर्ण इसलिए है क्योंकि इसी अंतर के कारण नारायण मुखर्जी देवदास के साथ पार्वती के रिश्ते को ठुकराते हैं। रिश्ता ठुकराने के कारण ही नीलकंठ चक्रवर्ती अपमानित महसूस कर अपनी बेटी की शादी एक अधिक उम्र

के दुहाजु जमींदार के साथ तय कर देते हैं। इस तरह पार्वती और देवदास का अलगाव देवदास के जीवन की त्रासदी का कारण बन जाता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि उपन्यास में पात्रों के जीवन, परिवार और समाज के बारे में जो बातें कही गयी हैं, उन्हें संवादों के माध्यम से दोहराने की बजाय फ़िल्म की कहानी के विकास के साथ उन्हें जोड़ दिया गया है और ज्यादातर दृश्यों के माध्यम से ताकि वे फ़िल्म में स्वाभाविक रूप से आए न कि थोपे हुए से लगें। इसी तरह 'देवदास' फ़िल्म में जब देवदास एक शहर से दूसरे शहर भटकता है तो उपन्यास के विपरीत उसे निरंतर दौड़ती हुई ट्रेनों के माध्यम से दिखाया गया है। रेल की तेज आवाज़ और उतनी ही तेज गति दरअसल देवदास के अंदर की बेचैनी को ही दर्शाता है। इसी तरह जब उसे यह लगने लगता है कि अब वह दो–चार दिन से ज्यादा ज़िंदा नहीं रह पायेगा तब अंधेरी रात में एक सुनसान स्टेशन पर उसका उतरना और बैलगाड़ी में पारो के ससुराल की तरफ उसका जाना दर्शक को उसकी आंतरिक वेदना से इतने गहरे रूप में जोड़ देता है जो उपन्यास में वर्णित शब्दों से कहीं ज्यादा प्रभावशाली लगता है। यह दरअसल दृश्य माध्यम की रचनात्मक शक्ति का प्रमाण है। लेकिन शब्दों का दृश्यों में रूपांतरण तभी संभव है जब पटकथाकार और फ़िल्मकार दोनों भाषाओं के रचनात्मक संबंधों को समझ सके।

23.4 सिनेमा की भाषा और सिनेमा में भाषा

सिनेमा की भाषा दरअसल दृश्यों की भाषा है जो कैमरे के माध्यम से लिखी जाती है। लेकिन वह भाषा जो साहित्य में प्रयुक्त होती है उसे संवादों के रूप में फ़िल्म में भी प्रयुक्त किया जाता है। लेकिन फ़िल्मों में प्रयुक्त यह भाषा दृश्यों का अविभाज्य अंग बनकर आती है। उसका स्वतंत्र अस्तित्व नहीं होता। दृश्यों से भिन्न यह भाषा केवल शब्दों के माध्यम से ही नहीं, मौन, सन्नाटा, माहौल में हर समय व्याप्त रहने वाली पार्श्व ध्वनियां और पार्श्व संगीत के माध्यम से भी व्यक्त होती है। इस इकाई के भाग 23.2 में 'सारा आकाश' की पटकथा के जिस अंश (सीन 13 बी. समर का कमरा) को पहले उद्धृत किया है, उसे अगर ध्यान से पढ़ें तो आप पायेंगे कि उसमें सिनेमा की भाषा और सिनेमा में भाषा का कई तरह से उपयोग किया गया है। पटकथा के इस अंश की शुरुआत ही कैमरे के संचालन से होती है :

'प्रभा की पीठ– वह अभी भी खिड़की के पास खड़ी है– कैमरा पीछे हटता है– समर अधलेटा दिखाई देता है– उसका चेहरा तना है– वह सीधा होकर दीवार के सहारे बैठ जाता है' यह अंश कैमरे के संचालन से संबंधित है। इसे पढ़कर यह समझ सकते हैं कि कैमरा आरंभ में प्रभा की तरफ है जो खिड़की के पास खड़ी है। स्पष्ट है कि कैमरा प्रभा के पीछे है और खिड़की से प्रभा बाहर देख रही है, लेकिन क्या देख रही है, कैमरा हमें यह नहीं बताता। इतना दिखाकर कैमरा पीछे हटता है और कैमरे की जद में समर आ जाता है जो बिस्तर पर अधलटा दिखाई देता है। उसका चेहरा तना हुआ है और उसके बाद वह सीधा होकर दीवार के सहारे बैठ जाता है। कैमरे के ये मुवमेंट कमरे के अंदर ही हो रहे हैं और कैमरा मिडशॉट या क्लोजअप में दृश्यों का फ़िल्मांकन कर रहा है। ध्यान दें कैमरे के अब तक के दृश्य हमारे सामने आते हैं, उससे कुछ अर्थ अभिव्यक्त हो रहे हैं। समर के कमरे में आने के बावजूद प्रभा खिड़की की तरफ ही देख रही है। एक तरह से प्रभा समर की उपेक्षा कर रही है। इससे समर के चेहरे पर तनाव आ जाता है। कैमरा उसके तने चेहरे को दिखाकर हमें उसका आभास करा देता है। लेकिन प्रभा अभी भी खिड़की के बाहर देख रही है इसलिए समर की प्रतिक्रिया भी तीव्र होने लगती है। कैमरा हमें आगे दिखाता है कि समर 'अपनी पीठ के पीछे लगे तकिए को झटके से किनारे करता है– वह– लगभग हांफ रहा है' उसकी यह प्रतिक्रिया बताती है कि प्रभा की उपेक्षा उसे बेचैन करने लगी है और उस बेचैनी को कैमरा हमें उसकी दो प्रतिक्रियाओं से दिखाता है। पहले वह अपनी पीठ पीछे रखे तकिए को हटाकर किनारे कर देता है और वह लगभग हांफ रहा है यानी उसकी बेचैनी बढ़ रही है। अभी तक कैमरा ही हमें समर के अभिनय से कमरे में उस गतिविधि से परिचित कराता है। लेकिन उसका हांफना दृश्य में दृश्य से भिन्न भाषा के प्रवेश की शुरुआत है। उसके बाद 'पंखे के खड़खड़ाने की आवाज़ बुलंदी पर पहुंच जाती है'। पंखे के खड़खड़ाने की आवाज़ का तेज होना समर के तनाव और बेचैनी को दरशाता है। यहां कमरे के माहौल की पार्श्व ध्वनि का उपयोग किया गया है जो इस

दृश्य के अर्थ को और अधिक उजागर करता है। इसी दृश्य में बिजली के पंखे का घूमना और हिलता हुआ बल्ब कमरे के तनावपूर्ण माहौल को तीव्रतर करता जाता है। यह तीव्रता कैमरे के द्वारा भी व्यक्त होती है जब कमरे के सभी कोण विकृत रूप में दिखने लगते हैं। ध्यान देने की बात यह है कि अब तक कमरे के दोनों पात्र में से कोई बोल नहीं रहा है जो कुछ भी व्यक्त किया जा रहा है, वह कैमरे के द्वारा और पार्श्व ध्वनियों द्वारा। अब समर की बेचैनी को वायस ओवर द्वारा शब्द दिये जाते हैं जब कमरे में समर के मन में चलने वाली उमड़न–घमड़न को व्यक्त किया जाता है, 'मैं यहां क्यों आया। न बोला, न स्वागत! क्या यह मेरा अपमान नहीं है? खड़ी है ढीठ की तरह खिड़की पर। यही शिक्षा है इनकी! मैट्रिक पास। समझती हैं, दूसरे लड़कों की तरह मैं इन्हें मनाऊंगा, खुशामद करूंगा? हुंह...बदतमीज़!!'यह एक तरह का आत्मालाप है जो समर के मन की बेचैनी और गुस्से को दिखाता है। यह सीन आगे भी चलता है। लेकिन इतने दृश्य से समझा जा सकता है कि इसके पूरे दृश्य को कैमरे से जीवित किया गया है, लेकिन इसे पूर्ण अर्थ, समर के अभिनय, पार्ष्व ध्वनियों और समर के आत्मालाप से निर्मित किया गया है। यानी कि कैमरे के उपयोग से यदि एक ओर सिनेमा की भाषा रची गयी है,तो उसे पूर्णतः सिनेमा में उस भाषा के उपयोग द्वारा दी गयी है जिसका हम आपसी संवाद में, सोचते हुए और अपने आसपास के माहौल में व्याप्त ध्वनियों के बीच करते हैं। फ़िल्मकार ने इन सबका उपयोग जीवन में जैसा होता है, वैसा नहीं किया है बल्कि उनके द्वारा खास अर्थ ध्वनित कराने के लिए उनमें कुछ ऐसे बदलाव किये हैं जो उस समय की पात्रों की मनोदशा को बिना शब्दों का प्रयोग किये व्यक्त कर सके। पंखे की तेज आवाज़, बल्ब का हिलना और कैमरे द्वारा कमरे के सभी कोणों को विकृ त करना ऐसे ही प्रयोग हैं। इनमें से कुछ भी कम करने से फ़िल्मकार जो अर्थ ध्वनित करना चाहता है, वह नहीं हो पाता।

23.5 चरित्र–चित्रण में संवाद की भूमिका

साहित्य की तरह सिनेमा में भी पात्रों का चरित्र उनके क्रियाकलापों और संवादों से सामने आता है। संवाद चाहे पात्र के स्वयं द्वारा कहे गये हों या जिन अन्य पात्रों के संपर्क में वह आता है उनके द्वारा कहे गए हों। यानी सिनेमा में चरित्र–चित्रण की पद्धति वही है जो साहित्य में होती है। फर्क सिर्फ इतना है कि कथा–साहित्य में पात्रों के क्रियाकलापों का वर्णन किया जाता है जबकि सिनेमा में क्रियाकलाप हमारे सामने घटित होते हुए दिखायी देते हैं। जब लेखक अपनी कथा–रचना में पात्रों के क्रियाकलापों का वर्णन करता है तब उसका यह वर्णन या तो उसकी अपनी दृष्टि से होता है या उस पात्र की दृष्टि से जिसके माध्यम से कहानी कही जा रही होती है। लेकिन उस वर्णन में भाषा भी अपनी भूमिका अदा करती है। इसी तरह फ़िल्म में क्रियाकलाप कैमरे के माध्यम से हमारे सामने उद्घाटित होते हैं। लेकिन यहां भी या तो फ़िल्मकार ने क्रियाकलाप को जिस रूप में कल्पित किया है उस रूप में हमारे सामने आता है या जो पात्र हमारे सामने उसका वर्णन कर रहा है। वर्णन करने का मतलब है अपनी स्मृति द्वारा क्रियाकलाप की पुनर्रचना। यह पुनर्रचना जरूरी नहीं कि फ़िल्मकार या पटकथाकार की कल्पना जैसी हो। वह उससे थोड़ा भिन्न भी हो सकती है।

यहां फिर 'देवदास' उपन्यास का उदाहरण देना उचित होगा। शरतचंद्र ने ससुराल में पार्वती के जीवन का जो वर्णन किया है उसमें वे बताते हैं कि किस तरह पार्वती अपने पति से मिले पैसे को गरीब और जरूरतमंदों में बांटती है। इस वर्णन से पार्वती की दया–भावना और दानशीलता का पता चलता है जो उसके चरित्र की विशेषताएं हैं। लेकिन उसकी इस दानशीलता को उसके सौतेले बेटे महेंद्र की पत्नी जलद बाला उचित नहीं समझती और अपने पति से शिकायत करते हुए वह कहती है, 'नयी मां को न तो है बाल न बच्चा। उन्हें भला घर–गिरस्ती की क्या फ़िक्र हो। सब तो फूंक दिया, दिखाई नहीं पड़ता'। महेंद्र की पत्नी द्वारा की गयी पार्वती की यह आलोचना पार्वती के चरित्र पर कम महेंद्र की पत्नी के चरित्र पर ज्यादा प्रकाश डालती है। यह उसकी अपनी सास के प्रति ईर्ष्या और द्वेष भावना को व्यक्त करता है। अगर इस प्रसंग को फ़िल्म में दिखाना है तो फ़िल्मकार को एक–दो दृश्यों में पार्वती को दान देते हुए, गरीबों की मदद करते हुए दिखाना होगा। जिस तरह उपन्यास में इस क्रियाकलाप का लेखक ने वर्णन किया है, वैसा किसी के मुख से कहलाना पर्याप्त

नहीं है। दान और मदद के एक–दो प्रसंग पार्वती के व्यक्तित्व की इन विशेषताओं को ज्यादा प्रामाणिक रूप में उजागर करते हैं। लेकिन इसके बाद का वह दृश्य जहां महेंद्र और उसकी पत्नी के बीच बातचीत होती है उस बातचीत को फ़िल्म में भी कमोबेश यथावत दिखाया जा सकता है। हां, यह अवश्य है कि यदि एक ओर जलद के संवाद से जलद की अपनी सास के प्रति दुर्भावना को समझा जा सकता है तो साथ ही यह संवाद बोलते हुए जलद के चेहरे पर जो भाव व्यक्त होंगे वह भी उसके व्यक्तित्व को और अधिक प्रभावी रूप में व्यक्त करेंगे। ठीक उसी समय जलद के पति महेंद्र के चेहरे पर जो भाव व्यक्त होंगे और वह अपनी पत्नी को जो जवाब देगा, वह उसके व्यक्तित्व को प्रकट करेंगे। महेंद्र जल्दी ही पहचान जाता है कि उसकी पत्नी के मन में मां के प्रति दुर्भावना है जबकि वह स्वयं सौतेली मां के प्रति गहरी श्रद्धा रखता है क्योंकि पहले ही दिन से पार्वती ने अपने पति के बच्चों को जिस निष्कपट भाव से स्नेह दिया है उसका गहरा प्रभाव महेंद्र पर है। यहां तक कि जो आभूषण अपने पति से मिले वह भी उसने अपने सौतेले बच्चों में बांट दिये थे। जाहिर है कि फ़िल्म में पात्रों द्वारा किये काम, दूसरों के प्रति व्यक्त की गयी भावना और उनके आपसी संवाद उनके चरित्र के विभिन्न पहलुओं को सामने लाते हैं। इसमें अभिनेता द्वारा किये गये अभिनय की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। क्योंकि अभिनय भी सिनेमाई भाषा का अंग है। साहित्यिक रचनाओं पर बनी फ़िल्मों में तो प्रायः खल चरित्र के चेहरे पर स्थायी रूप से बुरे भाव नहीं दिखायी देते। मसलन, 'सारा आकाश' में समर की भाभी के मन में प्रभा के प्रति दुर्भावना व्यक्त होती है लेकिन व्यवसायिक फ़िल्मों में खलनायिकाओं के चेहरे पर जो हर समय कठोरता के भाव दिखायी देते हैं, फ़िल्म में वैसे भाव समर की भाभी के चेहरे पर नहीं दिखायी देते।

23.6 सिनेमाई भाषा और संगीत

सिनेमाई भाषा में संगीत की अहम भूमिका होती है। संगीत का उपयोग फ़िल्म में दो रूपों में होता है। एक तो पार्श्व संगीत के रूप में और दूसरे गीत या नृत्य के दौरान बजने वाले संगीत के रूप में। पार्श्व संगीत दरअसल किसी दृश्य में व्यक्त होने वाली स्थितियों, भावनाओं, तनावों, संघर्षों, अंतर्द्वंद्वों आदि को उजागर करने में मदद करता है। साहित्य में इन सब स्थितियों में लेखक भाषा का इस्तेमाल करता है। लेकिन सिनेमा में संवाद, आत्मालाप और गायन के अलावा भाषा का वर्णन उस तरह नहीं किया जा सकता जैसा कि साहित्य में किया जाता है। उदाहरण के लिए 'तीसरी कसम' में हीरामन हीराबाई को लेकर गांव के रास्ते से जा रहा है। तब बैलों के चलने की आवाज़, उनके गले में बंधी घंटियों की आवाज़ और उबड़–खाबड़ रास्तों पर चलती गाड़ी की आवाज़ का आना स्वाभाविक है। ये ध्वनियां गाड़ी चलने के पूरे दृश्य की यथार्थ अभिव्यक्ति के लिए जरूरी है। लेकिन यदि इसी दौरान गाड़ी में बैठी हीराबाई के बारे में हीरामन के मन में कोई विचार आता है तो उसके लिए वायस ओवर का उपयोग किया जाएगा। लेकिन यदि उसे हीराबाई को लेकर मन में भय, रहस्य या रोमांच की भावना का उदय होता है तो उसे व्यक्त करने के लिए संगीत का उपयोग किया जा सकता है। यदि उसके मन में कोमल भावना का उदय होता है तो उसे भी पार्श्व संगीत के उपयोग द्वारा व्यक्त किया जा सकता है। इसी तरह अगर किसी दृश्य में तनाव की स्थिति है और तनाव लगातार बढ़ता जाता है तो पार्श्व संगीत में ऐसे वाद्ययंत्र का उपयोग किया जाता है जो तनाव के लिए उपयुक्त हो और जैसे–जैसे तनाव बढ़ता जाता है उस वाद्ययंत्र की ध्वनि तेज होती जायेगी। किस स्थिति में कौन–से वाद्य यंत्र की ध्वनि उपयुक्त होगी इसका निर्णय फ़िल्मकार और संगीतकार मिलकर करते हैं। भागते हुए लोग, दौड़ते हुए घोड़े, एक–दूसरे का पीछा करती कारें ऐसे दृश्यों में पार्श्व संगीत वही नहीं होगा जो प्रेम की अभिव्यक्ति के दृश्य में होगा। मसलन, 'मुग़ले आज़म' में सलीम और अनारकली के मिलन के दृश्य में बड़े गुलाम अली खां की गायकी का इस्तेमाल किया गया है जो पूरे वातावरण को न केवल रूमानी बनता है बल्कि उसको सामंती आभिजात्य का रूप भी प्रदान करता है। भावनाएं कोमल भी हो सकती हैं और कठोर भी और इन दोनों तरह की भावनाओं के लिए अलग–अलग ढंग के संगीत का उपयोग किया जाता है। अंतर्द्वंद्व और बाह्य संघर्ष में पार्श्व संगीत अलग–अलग ढंग का होगा। कहने का तात्पर्य यह है कि पार्श्व संगीत सिनेमाई भाषा का एक अनिवार्य अंग है। लेकिन इसका प्रयोग बहुत अधिक किया जाना फ़िल्म के प्रभाव को कम भी कर सकता है। पार्श्व संगीत दृश्यों का पूरक बनकर ही इस्तेमाल होना चाहिए। बहुत से

दृश्यों में पार्श्व संगीत की आवश्यकता नहीं होती। कई जगह सन्नाटा संगीत से ज्यादा प्रभावी होता है। पार्श्व संगीत अभिनेताओं के अभिनय को भी मुखर करने में सहायक होता है। पार्श्व संगीत किस तरह सिनेमाई भाषा को समृद्ध करता है इसे हम तभी समझ सकते हैं जब पार्श्व संगीत को हटाकर फ़िल्म देखें। दर्शक को तत्काल यह महसूस होने लगेगा कि फ़िल्म के दृश्य नग्न से हैं। पार्श्व संगीत उन्हें परिधान युक्त बनाता है।

23.7 सिनेमा में गीत

आमतौर पर भारतीय उपमहाद्वीप के बाहर बनने वाली फ़िल्मों में गीतों का उपयोग बहुत कम होता है, कह सकते हैं लगभग नहीं होता। गीत संगीत से परिपूर्ण फ़िल्म की वहां एक अलग ही विधा है जिनको संगीतात्मक फ़िल्म कहते हैं। जबकि भारत में जबसे सवाक फ़िल्में बननी शुरू हुई हैं गीत का उपयोग लगातार होता रहा है। आमतौर पर गीत सिचुएशन के अनुसार लिखे जाते हैं। अच्छी फ़िल्मों में गीत ठूंसे नहीं जाते बल्कि यह देखा जाता है कि कहानी के किस मोड़ पर गीत का उपयोग प्रभावशाली होगा। बिमल राय अपनी फ़िल्मों में गीतों का उपयोग ज़रूर करते थे, लेकिन फ़िल्म की यथार्थपरकता को गीत खंडित न करे इस बात का ध्यान रखते थे। यही बात महबूब, राजकपूर, गुरुदत्त, अमिय चक्रवर्ती, वी. शांताराम, आदि फ़िल्मकारों पर भी लागू होती है। मसलन, फ़िल्म 'दो बीघा ज़मीन' में जब शंभु महतो (बलराज साहनी) अपना कर्ज चुकाने के लिए कलकत्ता मजदूरी करने के लिए जाता है तब कंधे पर गठरी लादे और हाथ में लकड़ी पकड़े खेतों से गुजरते हुए जाता है, तो खेतों में काम करने वाले किसान गीत गाते हैं : *धरती कहे पुकार के, बीज बिछाले प्यार के, मौसम बीता जाए'* कहीं न कहीं शंभु महतो के अपनी धरती से बिछुड़ने की वेदना को व्यक्त करता है। इसी तरह फ़िल्म 'प्यासा' में जब नायक उस बाज़ार से गुजरता है जहां औरतें अपनी देह बेचने के लिए विवश होती है और उनकी इस भयावह दशा को देखकर गीत 'जिन्हें नाज़ है हिंद पर वो कहां है' नज्म गाता है। गीत के शब्दों में और उसके संगीत में अपनी देह को बेचने वाली स्त्रियों की व्यथित कर देने वाली सामाजिक स्थितियां और आंतरिक वेदना को बहुत भावपूर्ण ढंग से बांधा गया है। फ़िल्म 'धूल का फूल' एक मुस्लिम वृद्ध व्यक्ति एक ऐसे बच्चे को पालता है जिसके माता–पिता कौन है, उसे नहीं मालूम है। तब वह उस बच्चे को संबोधित कर जो गीत गाता है, उसमें सच्ची धर्मनिरपेक्षता को व्यक्त किया गया है, *'तू हिंदू बनेगा, न मुसलमान बनेगा, इंसान की औलाद है इंसान बनेगा'*।

फ़िल्मों में आदमी और औरत की ज़िंदगी के अकेलेपन को भी कई बार बहुत ही मार्मिक ढंग से व्यक्त किया गया है। मसलन, फ़िल्म 'अनुराधा' का गीत जहां फ़िल्म की नायिका अपने हृदय की वेदना और अकेलेपन को इन शब्दों में व्यक्त करती है : 'हाय रे वो दिन क्यों न आये' या फ़िल्म 'काबुलीवाला' का वह गीत जहां दूर बंगाल में अपने वतन अफगानिस्तान को याद करते हुए एक अफगानी जो गीत गाता है वह अपने वतन, घर–परिवार से बिछुड़ने की वेदना की ऐसी मार्मिक अभिव्यक्ति है जिसे इस गीत को सुनकर ही महसूस किया जा सकता है : 'ऐ मेरे प्यारे वतन, ऐ मेरे बिछड़े चमन, तुझपे दिल कुरबान, तू ही मेरी आरजू, तू ही मेरी ज़ान'। हिंदी फ़िल्मों के ऐसे हजारों गीत पिछले कई सालों से आम आदमी की भावनाओं को व्यक्त करने के माध्यम रहे हैं। ये गीत दरअसल फ़िल्म को ही भावनात्मक ऊंचाई नहीं देते बल्कि फ़िल्म की संप्रेषण क्षमता को भी बढ़ा देते हैं।

साहित्यिक रचनाओं पर बनी फ़िल्मों में भी गीतों का उपयोग किया गया है। फणीश्वरनाथ रेणु की कहानी 'तीसरी कसम उर्फ मारे गये गुलफ़ाम' पर बनी फ़िल्म 'तीसरी कसम' में कहानी में जिस–जिस सिचुएशन में गीत का संकेत दिया गया है, फ़िल्म में शैलेंद्र ने उन सभी सिचुएशन पर गीत शामिल किये हैं और इन गीतों ने फ़िल्म की गुणवत्ता को और बढ़ा दिया है। यह जरूर है कि समानांतर सिनेमा के दौर में साहित्यिक रचनाओं पर बनने वाली फ़िल्मों में गीतों का उपयोग काफी घट गया था। इसका कारण यथार्थवाद के प्रति बढ़ता आग्रह था। 1950–60 के दौर की उत्कृष्ट फ़िल्मों में गीत जरूर होते थे लेकिन बाद में व्यवसायिकता ने गीतों के स्तर को गिराया और बाद में उत्कृष्ट फ़िल्मों से गीत ही गायब हो गये। लेकिन चौथे दशक से

लेकर नब्बे के दशक तक के गीत आज भी सुने जाते हैं और पसंद किये जाते हैं। हालांकि अब भी फ़िल्मों में कभी–कभार अच्छे मेलोडियस गीत सुनने को मिल जाते हैं।

यह सही है कि फ़िल्मों के वे ही गीत लोकप्रिय होते हैं जिनके बोल, संगीत और गायकी तीनों ही सिचुएशन के अनुरूप हो। लेकिन निर्णायक गीत के बोल होते हैं। जिन कुछ गीतों का उदाहरण पहले दिया गया है, वे गीत न केवल भावों और विचारों की दृष्टि से उत्कृष्ट हैं वरन उनकी भाषा का रचनात्मक सौंदर्य भी अपूर्व है। खास बात यह भी है कि यदि एक ओर ये गीत फ़िल्म की कहानी का हिस्सा बनकर आते हैं तो दूसरी तरफ वे इस तरह लिखे गये होते हैं कि फ़िल्म से स्वतंत्र भी विशिष्ट मानव–भावनाओं का प्रतिनिधित्व करते हैं। उदाहरण के लिए 'काबुलीवाला' का गीत 'ए मेरे प्यारे वतन' का वतन अफगानिस्तान है लेकिन इस गीत को किसी भी देश के वासी अपने वतन के प्रति प्रेम को अभिव्यक्त करने के लिए गा सकते हैं। इन सब बातों की तरफ 1950–60 के दौर के फ़िल्मकार बहुत ध्यान देते थे। उस दौर में एकल गीत, युगल गीत और सामूहिक गीत तीनों तरह के गीतों को आमतौर पर पसंद किया जाता था और गीतों को फ़िल्माने पर बहुत मेहनत भी की जाती थी। यही नहीं हर तरह की सिचुएशन पर गीत लिखे जाते थे। मसलन, प्रेम, विरह, अकेलापन, सामूहिकता, हास्य, संघर्ष, तनाव आदि सब तरह के भाव गीतों के माध्यम से व्यक्त हुए हैं। लेकिन खास बात जिस पर विशेष रूप से ध्यान दिया जाता था वह यह कि गीत कहानी के एक खास बिंदु को, मोड़ को, सिचुएशन को व्यक्त करे। वह फ़िल्म की कहानी का हिस्सा बनकर आये उसमें जबरन ठूंसा हुआ न लगे। कई फ़िल्मों में गीत कुछ इस तरह उसके हिस्सा होते हैं कि उन गीतों को क्रम से सुनकर पूरी फ़िल्म सामने उभर आती है।

23.8 सारांश

एम. ए. हिंदी के इस आठ क्रेडिट के पाठ्यक्रम 'सिनेमा लेखन' के खंड–6 'साहित्य और सिनेमा' की यह दूसरी इकाई है और पाठ्यक्रम की 23वीं इकाई है। इस इकाई का शीर्षक है, 'रूपांतरण का भाषायी स्वरूप'। इस इकाई में साहित्य से सिनेमा में रूपांतरण की प्रक्रिया में भाषा के प्रयोग और स्वरूप के विविध रूपों का आपने अध्ययन किया है।

सिनेमाई रूपांतरण में भाषा की अहम भूमिका होती है। जब किसी साहित्यिक कृति को फ़िल्मांतरण के लिए चुना जाता है तब उस कृति को पटकथा में बदलना होता है। पटकथा मूल रचना का वह रूपांतरण है जिसे आधार बनाकर फिर फ़िल्म का निर्माण होता है। मूल रचना की तरह पटकथा भी उसी भाषा में लिखी जाती है जिसमें साहित्यिक रचना लिखी जाती है। लेकिन सिनेमा की भाषा दृश्य की भाषा है जबकि साहित्य की भाषा शब्दों की भाषा है। साहित्य की भाषा और सिनेमा की भाषा के अंतर का अध्ययन भी आपने इस इकाई में किया है।

साहित्यिक भाषा और सिनेमा की भाषा का अंतर वही होता है जो शब्द और दृश्य का अंतर होता है। शब्द द्वारा हम मनुष्य द्वारा की जाने वाली क्रियाओं का चित्रांकन या वर्णन कर सकते हैं। लेकिन दृश्य माध्यम में शब्दों को दृश्यों में रूपांतरण करना होता है जो मूल रूप में दृश्य ही होते हैं। आपने शब्द और दृश्य के बीच के संबंधों का विस्तृत अध्ययन भी किया है।

सिनेमा की भाषा और सिनेमा में भाषा पर भी इस इकाई में आपने अध्ययन किया है। सिनेमा की भाषा का अर्थ है कैमरे से जो दृश्य फ़िल्माये जाते हैं, उससे सिनेमा की भाषा का निर्माण होता है। लेकिन केवल कैमरे से नहीं बल्कि उनके साथ ध्वनि, संगीत और शब्द का भी प्रयोग होता है और इन सबके संयोग से सिनेमा की भाषा निर्मित होती है। लेकिन कैमरे के अलावा शब्दों, ध्वनियों और संगीत का उपयोग दरअसल सिनेमा में भाषा का इस्तेमाल है और इन दोनों भाषाओं के अंतर को और इनके बीच के संबंधों को समझना जरूरी है। आपने इकाई में इन पक्षों का भी अध्ययन किया है।

साहित्य की तरह सिनेमा में पात्रों के चरित्र–चित्रण के लिए उन प्रविधियों का ही इस्तेमाल किया जाता है जो साहित्य में किया जाता है। लेकिन कैमरे से जो दृश्य निर्मित होते हैं और उनके माध्यम से जो क्रियाकलाप हमारे सामने आते हैं या पात्रों के अभिनय द्वारा जो भावाभिव्यक्ति होती है, उनसे भी चरित्र–चित्रण में मदद मिलती है।यह भी आप जान चुके हैं।

संगीत सिनेमाई भाषा का एक अपरिहार्य अंग है। संगीत का इस्तेमाल दो रूपों में होता है, पार्श्व संगीत के रूप में और गीत, नृत्य आदि के अंग के रूप में। पार्श्व संगीत का मकसद फ़िल्म में व्यक्त स्थितियों, संघर्षों, तनावों, भावनाओं आदि की अभिव्यक्ति में सहायक के रूप में होती है। उनकी तीव्रता और गहनता को पार्श्व संगीत द्वारा व्यक्त किया जाता है। आप इसका भी अध्ययन इकाई में कर चुके हैं।

भारतीय सिनेमा में गीतों का प्रयोग फ़िल्म की कहानी के उन सिचुएशन को ध्यान में रखकर किया जाता है जहां भावनाओं की अभिव्यक्ति रागात्मक रूप में किया जाना कहानी के प्रभाव को बढ़ाने वाला होता है। गीत के द्वारा भावनाओं, स्थितियों, संघर्षों, तनावों को व्यक्त किया जाता है। प्रेम, अकेलापन, वेदना, आशा–निराशा आदि कई तरह की भावनाओं को गीतों के माध्यम से व्यक्त किया जाता है। कई उदाहरणों द्वारा गीतों के महत्त्व को इकाई में समझाया गया है।

23.9 उपयोगी पुस्तकें

1. फिल्मिंग फिक्शन : टैगोर, प्रेमचंद एंड राय, संपादन : एम. असदुद्दीन और अनुराधा घोष, 2012, ऑक्सफोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस, नयी दिल्ली।
2. पटकथा लेखन : एक परिचय, मनोहर श्याम जोशी, 2000, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली।
3. कथा–पटकथा : मन्नू भंडारी, 2003, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली।
4. हिंदी सिनेमा का समाज शास्त्र : जवरीमल्ल पारख 2006, ग्रंथ शिल्पी, दिल्ली।
5. लेखक का सिनेमा : कुंवर नारायण, 2017, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली।
6. भारतीय सिनेमा का अंतःकरण : विनोद दास, 2003, मेधा बुक्स, दिल्ली।
7. सारा आकाश : पटकथा : राजेंद्र यादव और बासु चटर्जी, 2007, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली।
8. देवदास (उपन्यास) : शरतचंद्र चट्टोपाध्याय, अनुवाद : हंसकुमार तिवारी 1968, हिंद पाकेट बुक्स, दिल्ली।

23.10 अभ्यास के लिए प्रश्न

1. सिनेमा की भाषा का क्या तात्पर्य है? साहित्य की भाषा से वह किस रूप में भिन्न होती है? स्पष्ट कीजिए।
2. सिनेमा की भाषा की विशिष्टता को 'देवदास' या 'सारा आकाश' के उदाहरण द्वारा समझाइए।
3. बिमल राय की फ़िल्म 'देवदास' के चरित्र और शरतचंद्र के 'देवदास'में चित्रित देवदास की तुलना कीजिए और बताइए कि क्या दोनों के चरित्र में कोई अंतर दिखाई देता है।
4. फ़िल्मों में पार्श्व संगीत के उपयोग के विविध रूपों और महत्त्व पर प्रकाश डालिए।
5. 'तीसरी कसम' में प्रयुक्त गीतों पर विचार करके बताइए कि इन गीतों ने फ़िल्म की गुणवत्ता बढ़ाने में किस तरह मदद की है?

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY